शोध संचयन
A Refereed Research Journal
And a complete Periodical dedicated to
Humanities & Social Science Research
ISSN 0975 1254 (PRINT)
ISSN 2249-9180 (ONLINE)
www.shodh.net
Vol. 13
Issue 1&2
15 July 2022

सामासिक सांस्कृतिक सौन्दर्य बोध पैदा करती हैं दलित कहानियां

बीज शब्द :

दलित कहानी, सौन्दर्य बोध, मानव-मुक्ति, दलित स्त्री, जीवन-मूल्य, मानवीय-मूल्य, आधुनिकता, समाजशास्त्र, सांस्कृतिक सौन्दर्यबोध, सामासिक संस्कृति

प्रस्तुत आलेख दलित कहानी पर आधारित है जिसमें उसके विविध पक्षों का विवेचन-विश्लेषण कर उसके सामासिक सांस्कृतिक सौन्दर्य बोध पर विचार किया गया है। इस क्रम में यह देखा जा सकता है कि दलित कहानियां समाज में मानवीय जीवन के सौन्दर्य बोध को उत्पन्न कर रही हैं और उसे चेतना से सुसज्जित कर दलित समाज को मुक्ति के लिए तैयार करती हैं।

*****

डॉ० प्रवीण कुमार
सहायक आचार्य, हिंदी विभाग
इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय,
अमरकंटक, मध्यप्रदेश
डॉ० कौशल कुमार
सहायक आचार्य, कोरियन अध्ययन केंद्र,
भाषा साहित्य एवं संस्कृति अध्ययन संस्थान,
जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

सामासिक सांस्कृतिक सौन्दर्य बोध पैदा करती हैं दलित कहानियां

सांस्कृतिक सौन्दर्यबोध सामाजिक परिवर्तन को स्थायित्व प्रदान करता है। दलित कहानियों में सांस्कृतिक सौन्दर्यबोध विविध स्वरूपों में व्याप्त है। वह सामाजिक परिवर्तन के लिए दलित वैचारिकी से सांस्कृतिक सौन्दर्य बोध को स्थापित भी करती है। 'सपना' कहानी मंदिर के निर्माण की प्रक्रिया और उसमें अधिकार की कहानी कहती है। गौतम जो दिन रात एक करके मंदिर बनाने में सहयोग देता है। पूजा के दिन उसे सबसे पीछे इसलिए बैठने को कहा जाता है क्योंकि वह एस0सी0 है। ''तो यह बात है मिस्टर नटराजन यह ज्ञान आपको आज ही प्राप्त हुआ है कि गौतम एस0सी0 है। जब वह दिन-रात अपना खून-पसीना बहा रहा था, इस मंदिर को खड़ा करने में, तब आप नहीं जानते थे कि वह एस. सी. है। तब आपने क्यों नहीं कहा कि जो एसी-सी-है वह मंदिर के काम में हाथ न बटाए। इसके चूने-गारे में अपने जिस्म का पसीना न मिलाए, क्यों नहीं आपने ऐलान किया कि जो ईंट किसी एस सी ने बनाई है या पकाई है, ट्रक में चढ़ाई या उतारी है, वे ईंट इस मंदिर में नहीं लगेंगी उस वक्त भी तो सोचना चाहिए था ऋषि ने पूरी शक्ति से विरोध किया।''[1] यह एक ब्राह्मण की सोच है। सवाल मंदिर प्रवेश का नहीं है सवाल अधि कार है क्योंकि मंदिर सार्वजनिक चीज होती है जिस पर सबका हक है। लेकिन ब्राह्मणवादी ऐसा नहीं सोचते हैं। उनकी सोच में मंदिर सिर्फ ब्राह्मण का है। नटराजन सहित रामलोचन उपाध्याय आदि की सोच ऐसी है। रामलोचन उपाध्याय का यह कथन गौरतलब है- ''अरे यह मंदिर उसका कैसे हो गया। ज्यादा ही पूजा पाठ का शौक है तो अपना मंदिर बना ले अलग से। किसने रोका है। यह हमारा है। हम पूजा-पाठ अनुष्ठान अपने ढंग से करेंगे। उसमें किसी शूक्त या मलेच्छ का प्रवेश निषेध है।''[2] मंदिर में शूद्रों का प्रवेश निषेध रहा है। बाबा साहब ने 'मंदिर प्रवेश' का आंदोलन चलाया था। उनका मकसद था मंदिर जैसी सार्वजनिक जगह पर सबका अधिकार है। लेकिन दलितों ने अपना मंदिर बना कर ब्राह्मणवाद से मुक्त नहीं हो सकें। यह बाबा साहेब का मकसद नहीं था। वे जानते थे कि मंदिर हिन्दू का प्रतीक है और हिन्दुवादी मानसिकता से संचालित तथा उसकी स्थापना करता है। वहीं सूरजपाल चौहान की कहानी 'साजिश' में हिन्दू मानसिकता की साजिश का पर्दाफाश है जो दलितों के असम्मानजनक, पुश्तैनी पेशों में फंसाए रखना चाहते हैं, चाहे वे उच्च शिक्षा प्राप्त क्यों न हों? दलित जागरण का संदेश देती है कहानी। वे अब सजग और सचेत होते जा रहे हैं। ''आदेश, उपदेश का धंधा बहुत हो चुका, अब यह सब बंद करो''[3] इस कहानी की मूल संवेदना है। वहीं 'पांचवीं कन्या' कहानी हिन्दुओं की कथनी और करनी की मानसिकता को उजागर करती है। अस्पृश्यता के अंत और जाति न मानने की ढोंग करने वालों की मानसिकता को उजागर करना ही कहानी की मूल संवेदना है। 'प्राण प्रतिष्ठा' कहानी में हिन्दुओं की धार्मिक भावना को उजागर किया है। ईश्वर की नजर में सबको समान मानने वाले हिन्दू समाज किस प्रकार ईश्वर के प्रतीक मूर्ति को बनाने वालों के प्रति नफरत की भावना रखता है और मूर्ति की शुद्धि करता है। यह कहानी इसी ओर इशारा करती है। ''उस मूर्ति को हम लोग दूध, गंगाजल आदि से इसलिए धोकर पवित्र करते हैं कि भगवान की उस मूर्ति को बनाने वाले अछूत और नीच जाति के लोग होते हैं बस, इसलिए उस मूर्ति को दूध और गंगा जल से पवित्र किया जाता है।''[4] यहां यह स्पष्ट हो जाता है कि ईश्वर के नाम पर चल रहे गोरख धंधा महज एक छलावा के सिवाय और कुछ नहीं है। दलित समाज को वर्णाश्रम धर्म का पालन करने को कहा जाता है। लेकिन दलित चेतना और दलित वैचारिकी इसका प्रतिकार ही नहीं करती है बल्कि इस वर्णाश्रम ध र्म की व्यवस्था के अंत की बात करती है। 'अपना धर्म' कहानी दलित एकता का संदेश देती है। ''दलितों को उस समय यह ज्ञान नहीं था कि जब दुश्मन प्यार दिखाए और मृदु भाषा का प्रयोग करे, तो समझना चाहिए कि दुश्मन बहुत बड़ा अहित करने वाला है।''[5] यहां से दलितों में एक नई चेतना का संचार होता है। यह दलितों को एकसूत्र में बांधने का काम करता है कि किसी भी हालत में दलितों को संगठन से अलग नहीं रहना चाहिए। संगठन में ही एकता है।

दलित कहानी के सौन्दर्यबोध सामासिक संस्कृति की स्थापना करती है। 'सलाम' कहानी जहां दलित और ब्राह्मण समाज के बीच एकत्व की संवेदना पैदा करती थी। मुस्लिम समाज को पास लाने की संवेदना पैदा करती है वहीं 'अपना गांव' दलित और मुस्लिम समाज के एकत्व को भी स्थापित करती है। भट्टा मालिक रहमत अली द्वारा काम दिया जाना-''देखो भाई, तुम्हें काम चाहिए और मुझे मजदूर। वैसे भी इस हालात में मैं तुम्हारी मदद न कर सका तो क्या अल्ला ताला मुझे मुआफ करेगा। 'भाइयों आज से ये भी तुम्हारे साथ ही काम करेंगे।'[6] दलित कहानी रिरियाहट, याचना एवं निरीहता को पूरी तौर पर नकारती है। यहां वेदना का आक्रोश

में रूपांतरण है। धर्म और संस्कृति की पवित्रता को चिह्नित कर नैतिकता और आदर्श के मानदंडों को दलित कहानी तोड़ती है। नए मानदंड और सौन्दर्य बोध का सृजन दलित कहानी के साहित्यिक सरोकार हैं। घृणा और हिंसा के स्थान पर समता, करुणा और भ्रातृत्व का भाव दलित कहानी के सामाजिक-सांस्कृतिक सरोकार हैं। यही दलित कहानी की वैचारिक प्रतिबद्धता भी है। वर्ण-जाति आधारित व्यवस्था का पूर्णत: खत्मा और ईश्वर का नकार दलित कहानी का मुख्य उद्देश्य है। व्यवस्था के क्रूरतम चेहरे को बेनकाब कर नियतिवाद से मुक्त करना दलित कहानी की जिम्मेदारी है। इस मुक्ति की राह में एक अंतहीन दिशा भी है लेकिन मुक्ति की अवधारणा अंतहीन को अंत भी करती है।

''मैं सफाई कर्मचारी बनना नहीं चाहता मैं पढ़ना चाहता हूँ जिस मुहल्ले में हम रहते हैं, वहां मेरा दम घुटता है। इसलिए नहीं कि वे सब गरीब लोग या छोटे लोग हैं। बल्कि इसलिए कि जिस तरह का जीवन वे जीते हैं- मैं उससे छुटकारा पाना चाहता हूं। वे अपनी तकलीफों के इतने आदी हो गए हैं कि उसे अपनी नियति मान बैठे हैं। उनके भीतर हीनता बोध जड़ें जमा चुका है। जिससे बाहर निकल कर ही दुनिया को देखा जा सकता है। हजारों साल से मिटी में दबे लोहे के टुकड़े की मानिंद उनकी सोच पर भी जंग लग गया है।''[7]

इसका समाजशास्त्रीय अध्ययन जिन बिन्दुओं को रेखांकित करता है वह है 1. मैं पढ़ना चाहता हूं, 2. जिस तरह का जीवन वे जीते हैं मैं उससे छुटकारा पाना चाहता हूं 3. वे तकलीफों को नियति मान बैठे हैं। 4. उनकी सोच पर जंग लग गया है। अंतिम तीन बिन्दुओं से मुक्ति के लिए वह पढ़ना चाहता है। अर्थात् दलित चेतना इस बात में है कि शिक्षित होकर ही नियतिवाद से मुद्र हुआ जा सकता है। नियतिवाद से मुक्ति में ही 'सोच में लगे जंग' को मिटाया जा सकता है और सोच बदलने पर ही तकलीफों से मुक्ति मिल सकती है। इस तरह से परिवर्तन की आकांक्षा की प्रक्रिया शुरू होती है जो कुछ करना चाहता है। आमूल परिवर्तन की आकांक्षा से ही भविष्य को निर्धारित किया जा सकता है। दलित कहानियों में आमूल परिवर्तन की तीव्र आकांक्षा विद्यमान है। उन कहानियों में भविष्योन्मुखी स्वप्न, एक दृष्टि और एक विकल्प दिखाई देता है- समता, स्वतंत्रता और बंधुत्व का। बाबा साहेब का नारा-'शिक्षित बनो! संघर्ष करो! संगठित हो' दलित कहानियों में साकार होता हुआ दिखाई देता है। दलित चेतना का विकास और परिवर्तनवादी स्वर दलित कहानी की मूल प्रवृत्ति है।

'यह अंत नहीं' ग्रामीण दलित स्त्री चेतना की प्रामाणिक कहानी है जो कुदृष्टि रखने वालों पर साहसिक ढंग से पुरजोर वार करती है और दुश्मन की बेहयाई को कायरता में तब्दील कर देती है। लेखक बड़ी तल्खी से पंचायती राज-व्यवस्था की निरर्थकता और उसके दुरुपयोग को महसूस करता है। गांव का बिसन दलित है, लेकिन वह सामंतों का मोहरा बनकर रह गया है। ऐसे में दलित स्त्री बिरमा को न्याय की आशा व्यर्थ दिखती है। परंतु बिरमा की मुखरता ने सभी में आशा का संचार कर दिया था, सभी ने मिलकर कहा था, ''ना बिरमा यह अंत नहीं है तुमने हमें ताकत दी है। हार को जीत में बदलेंगे, लोगों में विश्वास जगाकर, ताकि फिर कोई बिसन मोहरा ना बने।''[8] दलित कहानी का सौन्दर्य बोध भारतीय लोकतांत्रिक प्रशासन की छोटी इकाई पंचायत की ब्राह्मणवादी व्यवस्था पर प्रश्न चिह्न लगाकर सामाजिक परिवर्तन के स्वरूप को रेखांकित करता है। डॉ0 अम्बेडकर ने गांवों को भारतीय गणतंत्र की अवधारणा का शत्रु माना था। उनके अनुसार हिन्दुओं की ब्राह्मणवादी और पूंजीवादी व्यवस्था का जन्म भारतीय गांव में ही होता है। भारतीय गांव हिन्दू-व्यवस्था के कारखाने हैं। उनमें ब्राह्मणवाद, सामंतवाद और पूंजीवाद की साक्षात अवस्थाएं देखी जा सकती हैं, उनमें स्वतंत्रता, समता और बंधुत्व के लिए कोई स्थान नहीं है।

दलित कहानियां मनुष्यत्व का सौन्दर्य स्थापित करती हैं। दलित कहानी की वैचारिकी उसकी अमूल्य निधि है। दलित कहानीकारों की वैचारिक प्रतिबद्धता और दलित चेतना का प्रसार दलित साहित्य की धरोहर है। ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानी 'मुम्बई कांड' में वैचारिक प्रतिबद्धता साकार होती है। कहानीकार सजग और सचेतन रूप से प्रतिशोध एवं प्रतिरोध की बारीकियों को स्पष्ट करता है। कहानी का पात्र सुमेर मुंबई कांड के प्रतिक्रिया स्वरूप जूते की माला लेकर उठ खड़ा होता है, लेकिन कदम बढ़ाते ही उसके मस्तिष्क में विचार कौंधता है, ''अरे! मैं यह क्या कर रहा हूँ। मुंबई में किसी ने मेरे विश्वास पर चोट की और मैं यहां किसी की आस्था पर चोट करने जा रहा हूँ। कुछ गांधी को 'बापू' कहते हैं और कुछ अम्बेडकर को 'बाबा' य वहां 'बाबा' कहने वाले मारे गए, यहां बापू वाले मारे जा सकते हैं। 'बाबा' कहने वालों पर भी गाज गिर सकती है। जो भी हो मारे तो निर्दोष ही जाएंगे नहीं यह रास्ता न बुद्ध का है और न ही अम्बेडकर का।''[9] यह वैचारिकता ही दलित साहित्य का सौन्दर्यबोध है। यह बोध ही सामाजिक परिर्वतन का आधार है। जहां किसी भी प्रकार का अपमानबोध नहीं है आत्मबोध है, विश्वास है कि मानव जीवन का सौन्दर्य ही सही मायने में दलित सौन्दर्यबोध है जिसमें प्रतिशोध

नहीं प्रतिरोध की संस्कृति है। दलित चेतना का यह प्रतिरोध ही सामाजिक समता के लिए, सामाजिक संरचना और सामाजिक परिवर्तन के लिए अनिवार्य है। दलित कहानियां हिन्दू-व्यवस्था की जमीनी हकीकत की बानगी प्रस्तुत करती हैं। दलित कहानियों की भाषा और स्तरीयता पर प्रश्न चिह्न लगाने वाले वर्ग को पुनर्विचार और आत्मालोचन के लिए विवश करती है। दलित कहानी के सरोकारों को, उसकी ऐतिहासिकता और मानवीय पक्षों को जाने बगैर दलित कहानी के संवाद, भाषा-शैली और उद्देश्यों को नहीं समझा जा सकता। वह कहानी ही क्या जो अंतस को हिलाकर न रख दे। आत्म-सम्मान, गरिमा और अधिकार के संघर्ष को साकार करतीं दलित कहानियां मनुष्यता का नया पाठ पढ़ाती हैं जिसे वर्ण-जाति आधारित व्यवस्था ने नीचे धकेल दिया था। दलित कहानी यथास्थितिवाद को तोड़ती है और अम्बेडकरवादी विचारधारा के आधार पर चेतनशील समाज की निर्मिति कर समतावादी समाज का विकल्प प्रस्तुत करती है।

दलित कहानियों के सौन्दर्यबोध परंपरागत साहित्य लेखन और उसके सौन्दर्यबोध से कथावस्तु और विशिष्टत दोनों ही स्तरों पर भिन्न हैं। दलित कहानी का दायरा बहुत विस्तृत है जैसे- समाज के हर वर्ग की उपस्थिति, धर्म से जिस तरह, साम्प्रदायिकता और वर्ण-व्यवस्था का अंत: संबंध, शिक्षण संस्थानों में दलितों के प्रति सोच और उनके प्रति व्यवहार, ब्राह्मणवादी मूल्यों का नकार, पितृसत्तात्मक व्यवस्था में दलित और गैर दलित स्त्री की स्थिति, शहरी और ग्रामीण जीवन का द्वन्द्व, जाति-उपजाति का द्वन्द्व, इतिहास एवं संस्कृति की पुर्नव्याख्या, यातना की अभिव्यक्ति, कर्मकांड और ईश्वर का नकार आदि। इतिहास का पुर्नपाठ और पुर्नलेखन की आवश्यकता पर दलित लेखन सजग है। हजारों साल से पीढ़ी-दर-पीढ़ी झेलते हुए यातना एवं पीड़ामयी व्यवस्था को उखाड़ फेंकने की प्रतिबद्धता दलित कहानी की कथावस्तु, विशिष्टता और सरोकारों में रूपांतरित होती है। वर्चस्व और विषमतापरक व्यवस्था को बराबरी और भाईचारे में तब्दील करने का सपना दिखाती दलित कहानियां सरोकारों को सुस्पष्ट करती हैं। घृणा और हिंसा को करुणा एवं अहिंसा में रूपांतरित करने की आकांक्षा दलित कहानी का महत्वपूर्ण पहलू है। दलित साहित्य की वैचारिकी को समझे बगैर दलित कहानी की संवेदना को नहीं समझा जा सकता। फुले-अंबेडकर के लेखन, आंदोलन एवं संघर्ष की सच्चाई और अर्थवत्ता से जुड़े बगैर दलित कहानी के मर्म को समझना मुश्किल है। दलित कहानियां दलित आंदोलन की देन है। हिन्दी दलित कहानी की संवेदना और सरोकार सामाजिक परिवर्तन पर आधारित हैं।

दलित समाज के पास संसाधन विहीनता के कारण अपना घर नहीं रहा है। घर का सपना उनकी आकांक्षा रही है। वह अपने श्रम के बल अपना घर बनाना चाहता है लेकिन ब्राह्मणवादी मानसिकता के लोग किस प्रकार उसे घर विहीन कर देती है। 'खानाबदोश' कहानी इसी संवेदना को व्यक्त करती है। ''भट्टे से उठते काले धुएं ने आकाश तले एक काली चादर फैला दी थी। सब कुछ छोड़कर मानो और सुकिया चल पड़े थे। एक खानाबदोश की तरह। जिन्हें एक घर चाहिए था, रहने के लिए। पीछे छूट गए थे कुछ बेतरतीब पल, पसीने के अक्स जो कभी इतिहास नहीं बन सकेंगे। खानाबदोश जिंदगी का एक पड़ाव था यह भट्टा।''[10] यहां स्पष्टत: यह देखा जा सकता है कि किस प्रकार दलितों की इच्छा-आकांक्षा पर ब्राह्मणवादियों का कहर बरसता है कि इतिहास बनने की सारी कवायद पर काले धुएं की चादर फैल जाती है। लेकिन दलित समाज कभी भी ब्राह्मणवादियों के पास घुटना नहीं टेकता है। वह अपनी चेतना के बल अपनी इच्छा-आकांक्षा को साकार करती है। मोहनदास नैमिशराय की कहानी 'अपना गांव' ऐसी ही कहानी है। जिसमें दलित समाज न केवल अपने स्वप्न का अपना गांव बसाते हैं बल्कि भारतीय समाज की तथाकथित गांव की छवि को भी उजागर करती है कि किस प्रकार वह दलित समाज के लिए एक अभिशाप है। वह गांव सामंतोंध जमींदारों का गांव है जिसमें दलितों के लिए कोई जगह नहीं। उसमें उसकी संस्कृति बोलती है। ''गांव का कोई आदमी ऐसा शायद ढूंढ़ने से ही मिले जिसकी पीठ पर ठाकुर या उसके कारिंदों के चाबुकों के निशान न पड़े हों। वे निशान दरिंदगी के चश्मदीद गवाह थे। एक-एक के बदन ने अनचाहे वह सब झेला था।''[11] दलित समाज की पीठ पर पड़ी यह निशान भारतीय समाज के उस क्रूरतम चेहरे को दिखाता है जो कहीं से भी मानवीय नहीं है। इतना ही नहीं भारतीय समाज में वैदिक संस्कृति में स्त्रियों को उच्च दर्जा देने वाले की भी पोल पटी खोलती है कि मर्दवादी मानसिकता के कारण समाज में स्त्रियों की क्या दशा है। इसे इन पंक्तियों से समझा जा सकता है-

''वह जुलूस सारे गांव में निकला था। आजादी की प्रभात फेरी जैसे न था वह बल्कि सामंतों/जमींदारों की नंगई का जीता जागता उदाहरण था। वह रो रही थी और वे हंस रहे थे, थूक रहे थे। अपनी संस्कृति की बेहयाई पर नहीं, एक अबला पर। उनके घरों में लक्ष्मी थी, सीता थी, पार्वती थी, सरस्वती थी, और भी अनगिनत देवियां थी। अपने-अपने घरों में मिटी की मूर्तियों में

जिनकी वे पूजा करते थे, पर रोती बिलखती जिंदा छमिया का उपहास कर रहे थे। उनकी औरते खिड़की और दरवाजों के पास खड़ी हो स्वयं एक औरत की अस्मिता को चिंदी-चिंदी होते देख रही थीं। उनके भीतर न अफसोस था और न कोई झिझक। क्योंकि उन्होंने भी अपने आपको मर्दों की सवर्ण जात में शामिल कर लिया था।''[12]

अर्थात नारी को देवी का दर्जा देने वाली भारतीय संस्कृति यह स्पष्ट कर देती है कि औरत-औरत में भी अंतर होता है। गैर दलित औरत जिस देवियों की पूजा करती है वहीं वह एक औरत की अस्मिता के खिलाफ आवाज नहीं बुलंद कर सकती है बल्कि अपने आप को मर्दों की सवर्ण जात में शामिल पाती है। यह काम संस्कृति और संस्कृति को वहन करने वाली भाषा करती है। सामंती संस्कृति में एक स्त्री मांस का लोथड़ा की तरह रही है जिसे पुरुषरूपी गिद्ध नोंचता रहता है। ''कपड़े पहनने के बाद भी उसे अपना शरीर नंगा ही महसूस हो रहा था। सारे शरीर की खाल कपड़े में बदल गई हो जैसे। उसी खाल को जैसे गिद्ध खींच रहे थे। उनके तेज पंजों में मांस के टुकड़े थे और मुंह खून से सना था।''[13] यहां गिद्ध शोषक का प्रतीक है। पंजों में मांस के टुकड़े और मुंह में खून उनकी हिंसक प्रवृत्ति की भयावता को दर्शाता है। इसी आक्रांता की संस्कृति में निरीह, विवश लोगों अपनी प्रखरता, मुखरता से समझौता कर लेता है। उसे नियति मानकर जीवन जीने लगते हैं। नियति और परिस्थितियों के बीच दलित समाज जीवन जीता रहा है लेकिन आज दलित चेतना उसका प्रतिरोध करती है। प्रतिरोध की प्रतिक्रिया में उसे अपनी कीमत चुकानी पड़ती है। छमिया को भी यह कीमत चुकानी पड़ी है। ''तूने म्हारे खेतों में काम करने को क्यों मना किया?'' इस ना के जबाव में उसे अपनी अस्मिता खोनी पड़ी। यह है भारतीय समाज की संस्कृति! जहां प्रतिरोध का स्वर आता है कि उसकी कीमत स्त्री को चुकानी पड़ती है। इस मर्दवादी भारतीय संस्कृति की कलई खोलता है दलित कहानी का सौन्दर्यबोध। भारतीय गांव दलित कहानियों में दलित समाज की नव आकार लेती चेतना को देखा जा सकता है। यह चेतना सिर्फ बोलती ही नहीं है बल्कि अधिकार और परिवर्तन की बात करती है। तभी नई पीढ़ी नई चेतना बोलती है कि ''पर ऐसे कब तक चलेगा? कल संपत की घरवाली को नंगा किया, आज किसी और की भैन-बैटी को भी वे नंगा गांव में घुमा सकै हैं।'' यही दलित चेतना है जो अन्याय, अत्याचार, शोषण आदि के खिलाफ आवाज उठाती है। यह आवाज गांव और शहर दोनों जगह सुनाई पड़ सकती है। गांव और शहर दोनों स्वयं में चेतना का प्रतीक है। गांव की चेतना क्या है और शहर की चेतना क्या है? इसे आसानी से इस वाक्य द्वारा समझा जा सकता है। संपत का बाप हरफुल का कथन है, ''हम तो गांव में रहते हैं। गांव की परंपराओं को जानते हैं। चुप रहना सीखा है। जुल्म अत्याचार भी सहते रहे हैं पर वह तो यह सब चुपचाप नहीं सहन कर पाएगा।''[14] इसी से गांव में जमींदारों के चरित्र को समझा जा सकता है साथ ही उसके अत्याचार को भी। इसलिए डॉ0 अम्बेडकर ने 'गांव को जातिवाद का कारखाना कहा था।' भारतीय गांव की संस्कृति सामंती व जाति व्यवस्था की संस्कृति है। जहां दोनों के चिह्न व प्रतीकों के खिलाफ होना ही जिंदगी के लिए अभिशाप बन जाता है। गांव का शहरीकरण या गांव से पलायन नई चेतना का प्रतीक है। दलित चेतना दलितों की बनाई गई मानसिकता को झकझोरती है। उसकी नियति को तोड़ती है। संपत का कथन ''अरे तुम मर जाओगे तो कौन सा ठाकुर को कुछ फर्क पड़ जाएगा। उसके घर के बरतनों में तो कमी नहीं आ जाएगी। हवेली की एक ईंट पर भी कुछ असर नहीं होगा और सच बात तो यह है कि तुम सब तो पहले से ही मरे हुए हो। मुरदे न होते तो मेरी बीबी को नंगे होते हुए देखते रहते।''[15] इस प्रकार देखा जा सकता है कि किस प्रकार दलित चेतना लगातार गांव की परंपरा से बराबर लड़ रही है। गांव की परंपरा और रीति-रिवाज ने वर्षों से दलितों को वस्तु बना कर रखा है और दलित समाज उससे लगातार जूझता रहा है-

''यूं वह दस सालों से बराबर लड़ रहा था, गांवों की परंपराओं से जिन्हें ठाकुर तथा बामनों ने मिल-जुल कर बनाया था। गांव में उसी अन्याय के प्रतीक थे मंदिर और हवेली। मंदिर बामनों का था और हवेली ठाकुरों की। शेष गांव पर बनियों, कायस्थों यादवों, कुर्मियों और राजपूतों का कब्जा था। दलितों की बस्ती उसी हिस्से में आती थी जिस पर सबका हक था, सबका अधिकार था। इन्हीं अधिकार संपन्न जातियों ने उसकी बस्ती के एक-एक आदमी-औरत, बच्चे, बूढ़े को वस्तु बना दिया था। जिसका जब चाहा इस्तेमाल कर लिया और जब मन किया एक तरु फेंक दिया।''[16]

अर्थात ब्राह्मणवाद हमेशा से दलित समाज को मुखौटा बनाकर उसका उपयोग करता रहा है। घर-परिवार से लेकर सत्ता की गलियारों के बीच दलित सिर्फ एक उपयोग की वस्तु बनकर रहा है। लेकिन दलित चेतना कभी भी उपयोग की वस्तु नहीं बनी है। वह संघर्ष करती है और मानवीय मूल्यों के साथ जीवन जीने की बात करती है। वह कहती है कि क्रांति करने वाले तो संसद

और विधानसभाओं में जाकर सो गए हैं। हम तो केवल हम पर जो जुल्म और अन्याय हुआ है उसके खिलाफ कुछ करना चाहते हैं। संपत की चेतना में गुलामी के खिलाफ आग है जिसमें वह गुलामी को भस्म कर देना चाहता है। ''भैया हम कब तक कमजोर बने रहेंगे? कब तक हम गुलामों की तरह रहेंगे।''[17] जब तक आदमी कमजोर बना रहता है तब तक ही उसकी स्थिति दयनीय होती है। वह गुलामों की स्थिति में जीवन यापन करते हैं। जब जाग जाते हैं तब वे अपनी गुलामी की जंजीरे तोड़ फेंकते हैं। संपत की चेतना में 'कब तक' का भाव उसके सौन्दर्य बोध को रेखांकित करता है कि अब वे चेतनशील हो गए हैं। यही 'कब तक' दलित समाज को उसकी खामोशी को तोड़ने के लिए चाहिए। जब खामोशी टूटेगी तब न केवल सामाजिक परिवर्तन होगा बल्कि एक नया इतिहास भी रचा जाएगा।

दलित कहानी में नई संरचना और नए सौन्दर्यबोध निर्मित करने की चेतना और संवेदना है। इस सौन्दर्य बोध में एक इतिहास है। इतिहास बोध की चेतना ने दलित समाज को नया सौन्दर्य बोध दिया है। 'अपना गाँव' कहानी के हरिया ने अंधकार के बीच संघर्ष और चेतना का संचार किया है। ''हरिया फिर अंधेरे में लोगों की धड़कनों की जैसे टोह लेना चाहता था- मैं कुछ कऊं, बताओं तुम सब मानोगे। हां हम सब मानेंगे। तो हम अपना नया गांव बसाएंगे। अरे हिंया रओगे तो ऐसे ही गुलाम बनकर रैना होगा। पानी में रहकर मगरमच्छ से बैर होवै है भला। फिर हम कर भी क्या सकत हैं। हिंया से निकलना ही पड़ेगा। बाकी तुम्हारी मर्जी। मेरी तो मंसा अब यई है। जिस गांव में हम्हारी कोई इज्जत नईं, उस गांव में रैने से कोई फायदा नईं।'' यहां हरिया में एक नई चेतना दिखाई देता है। मानवीय गरिमा और अस्मिता व अस्तित्व की बात यहां स्पष्टत: देखी जा सकती है। वहीं दलित स्त्री की चेतना भी सहभागिता के साथ नए सौन्दय बोध में शामिल है। 'अपना गांव' कहानी की बिरमों का यह स्वर स्त्री चेतना को ही रेखांकित करता है कि ''म्हारा बुडढ़ा ठीक कहवै है। हमैं हिंया से चले जाना ही चईयै। अब इस गांव में रहने में कोई धर्म-धीश नईं है।'' यही चेतना क्रांति का संचार करती है और अंधेरे के बीच रोशनी का काम करती है। ''आधी रात बीत गई थी। चारों ओर अंधेरा था। पर हरिया का फैसला सुन पंचायत से उठे लोगों के भीतर अनायास ही जैसे उजाला हो गया था। कैसी अजीब बात थी। एक अस्सी साल के बूढ़े ने सबको संघर्ष की राह दिखाई थी। वही बूढ़ा जो अस्सी साल से सारी परंपराओं को किसी न किसी तरह मानता रहा था।''[18] अस्सी साल की यह परंपरा वस्तुत: दलित समाज व साहित्य का इतिहास बोध है जो दलित समाज में नया सौन्दर्य बोधा पैदा करता है। नया इतिहास रचता है।

दलित कहानियों में एक नई चेतना और उससे निर्मित नया सौन्दर्य बोध है जिसमें नए समाज के निर्माण की संरचना का मानचित्र निहित है। 'अपना गांव' बसाने के निर्णय से दलित समाज के सौन्दर्य बोध के रचनात्मक कार्य को देखा जा सकता है वहीं उसके स्वरूप भी समझा जा सकता है। ''गांव से चला यह काफिला धीरे-धीरे भट्टे के आस-पास पसरने लगा था। सबने वहां आकर राहत की सांस ली थी। अब कोई ठाकुर उनके पास न था। न ही अनगिनत हरम वाली हवेली जहां दलित बस्ती से जबरिया औरतों को ले जाया जाता था। ऊपर आकाश था और नीचे जमीन, उनकी अपनी जमीन जिस पर उन्हें इज्जत से बसना था।'' इसी के साथ गांव से आए सभी मर्द-औरतों की पंचायत ने अपनी आवश्यकता का स्वरूप भी गढ़ा जो उसके सौन्दर्यबोध को निर्धारित करता है। ''नये गांव में किस-किस चीज की जरूरत पड़ेगी। 'मंदिर' मंदिर से पहले स्कूल चईयै।' हरिया ने सहमति में अपनी गरदन हिलाई-हां, पैले सकूल ही चाइयै। जिसमें म्हारे बच्चे पढ़-लिखकर कुछ बने।' 'गांव में एक डागडर बाबू भी होना चाइयै।' मिटटी के एक ऊंचे टीले पर वे बैठे थे। धूल मिटटी से लथपथ। भावी गांव के लिए अपने-अपने हाथों की हथेली पर योजनाओं की लकीरें खींचते हुए। उनके माथे पर पसीना चुहचुहा रहा था। पर चेहरे पर संतोष था। नये परिवेश में आकर उनका उत्साह दोगुना हो गया था।''[19] नई योजनाएं बनाने के साथ जो नया उत्साह दलित समुदाय में उत्पन्न हुआ यही उसका सौन्दर्यबोध है जो सामाजिक संरचना की ढांचा तैयार करती है।

दलित साहित्य का सौन्दर्य बोध जातिवादी संरचना को खत्म करने के लिए अंर्तजातीय विवाह की संकल्पना प्रस्तुत करता है। दलित कहानियां अंर्तजातीय विवाह की संकल्पना को स्थापित करती है। 'मैं ब्राह्मण नहीं हूँ' ब्राह्मणत्व के ढोंग की कहानी है। यह कहानी ब्राह्मण श्रेष्ठ का विरोध करती है। ''मेरे लिए ब्राह्मण होना ही इंसान की श्रेष्ठता का प्रतीक नहीं है, यह एक भ्रम है जिसमें सभी ऊंच-नीच का खेल खेल रहे हैं। आप जितना मातम मनाएं मैं शादी अमित से ही करूंगी।''[20] सुनीता के इस कथन में न केवल ब्राह्मणत्व की श्रेष्ठता और जाति की जड़ता टूटती है बल्कि अंतर्जातीय विवाह की प्रक्रिया सामाजिक स्तर पर होती है। एक आत्मविश्वास से वह अमित के साथ शादी करती है और कहती है 'अमित मैं ब्राह्मण नहीं हूं।' मैं ब्राह्मण नहीं हूँ में एक ओर सामाजिक-सांस्कृतिक श्रेष्ठता की भावना खत्म होती है

और दूसरी ओर मनुष्यत्व की अवधारणा प्रस्तुत करती है। वहीं नई पीढ़ी की समाज में क्या भूमिका होनी चाहिए इसकी अपेक्षा साहित्य में होती है और साहित्य उसमें अपनी भूमिका तय करता है। दलित कहानियां इस अपेक्षा को भी रेखांकित करती है और ब्राह्मणत्व के ब्रह्मास्त्र के विरोध करने की अपेक्षा करती हैं। जब तक ब्राह्मणत्व का विरोध नहीं किया जाता है, उसको चुनौती नहीं दी जाती है तब तक मनुष्यत्व की संवेदना समाज में प्रवाहित नहीं होगी। सामाजिक बंधुत्व की स्थापना नहीं होगी। ऐसी स्थिति में करुणा और मैत्री की बात बेमानी होगी। 'बैल की खाल' शीर्षक कहानी में दलितों के प्रति अभिजात वर्ग के अमानवीय व्यवहार और उनकी यातनापूर्ण जिंदगी की विडम्बनाओं की कलात्मक अभिव्यक्ति हुई है। ''इस कहानी में ओमप्रकाश वाल्मीकि दो दृश्य हमारे सामने प्रस्तुत करते हैं। एक है सवर्ण जातियों द्वारा काले और भूरे का अमानवीय शोषण। दूसरा है एक बेजुबान बछड़ी की जान बचाने की कोशिश करते काले और भूरे का चित्र। सवर्ण जाति के लोग अवर्णों के प्रति अमानवीय व्यवहार करते हैं। लेकिन ये अवर्ण लोग चुपचाप उनकी सेवा करते हैं। यही नहीं उनके दिल में अपने सहजीवी से ही नहीं, बल्कि मवेशियों तक से प्रेम और करुणा की अजस्र धारा है। अब पाठकों को ही मूल्यांकन करना है कि इनमें श्रेष्ठ कौन है। यद्यपि इस कहानी में कोई विद्रोही भावना या संघर्ष छेड़ने का संदेश भी नहीं, फिर भी वर्ण-व्यवस्था की अमानवीयता और अमानवीय समझे जाने वाले निचले तब के की दलित जनता की दरियादिली का यथार्थ चित्रण हुआ है, जो वाल्मीकि की प्रतिबद्धता का ही गवाह है।''[21] इससे स्पष्ट होता है कि दलित कहानियों का सौन्दर्यबोध सिर्फ मनुष्य तक ही सीमित नहीं है, बल्कि उसमें प्राणी जगत के सभी प्राणियों के लिए करुणा और मैत्री का भाव है।

धर्म, शास्त्र, राजनीतिक विचारधारा और व्यवसाय के सौन्दर्य बोध के समीकरणों को भी दलित कहानी उजागर करती है। अजमेर सिंह काजल की कहानी 'हम सब एक हैं' भारत में ब्राह्मणवादी साम्राज्य की स्थापना और उसकी राजनीति की बात करती है। धर्म और राजनीति के तहत किस प्रकार दलित समाज को बहिष्कृत किया गया है। इसका खुलासा यह कहानी करती है। इसलिए वे लिखते हैं कि धर्म और जाति व्यवस्था का अन्योन्य संबंध है। एक नीति लागू करता है दूसरा उसे अश्रय देता है। कहने को धर्म की धारणा ईश्वर की है लेकिन हकीकत क्या है। इसे अशिक्षित अंधविश्वासी जनता कहां समझती है। वे सिर्फ बगुला भगत हैं। ''यह कितनी बुरी और भंयकर घटना है, धर्म की नजरों में पीड़ित व्यक्ति का कोई अस्तित्व नहीं है, वह मार खा रहा है, डरा हुआ है, रो भी नहीं सकता अद्‌भुत आतंक है धर्म और जाति व्यवस्था का।''[22]

यह जो आतंक है जनता में धर्म और जाति व्यवस्था का। यही आतंक उसे मनुष्य नहीं बनने देता है। क्योंकि यहां धर्म सहज मानवीय आचरण व विचार नहीं, एक कानून है जिसे हर हालत में सभी को पालन करना है। यह हिन्दू धर्म की विशिष्टता है। ऐसा भी नहीं कहा जा सकता है कि यह सिर्फ हिन्दू धर्म में ही है। लगभग सभी धर्म में यह नियम किसी न किसी रूप में प्रवेश कर चुका है। कहने को सभी इंसान बराबर है। सभी ईश्वर की संतान है परन्तु व्यवहार में ऐसी बात नहीं है। धर्म में पवित्रता और अपवित्रता की भावना ही उसे धर्म नहीं रहने देता है क्योंकि वह इंसान को बराबरी का दर्जा नहीं देता है। यही कारण है कि सभी को संवैधानिक अधिकार मिलने पर भी ध र्म की कटरता उसे समानता का व्यवहार करने की इजाजत नहीं देता है। ''जब शास्त्रों में इन्हें अपवित्र घोषित किया गया है तो ये आज भी अपवित्र ही हैं। साफ सुथरे घरों में रहने व पैसे कमाने से क्या नीची जाति बदल जाएगी? कदापि नहीं! हम नहीं मानते ऐसे किसी कानून-वानून को जो हमारे धर्म स्थली में इन्हें प्रवेश दिलवाता है।''[23] यहीं से मानवीय अधिकार और धर्म के संबंध को समझा जा सकता है खासकर हिन्दू धर्म के संबंध में। हिन्दू धर्म की कटरता किसी भी प्रकार के कानूनों को नहीं मानती है। यह भी एक प्रकार से ब्राह्मणवाद की चरम सीमा है। ब्राह्मण ावाद समानता के कानूनों को तोड़ कर ही पनपा है और जीवित भी रह सकता है। समानता की स्थापना में ही उसकी मौत छिपी होती है। यही कारण है कि ब्राह्मणवाद ने कभी भी समानता को किसी भी रूप में स्थापित ही नहीं होने दिया और जहां समानता का व्यवहार पहले से चला आ रहा था वहां भी अपनी नीति से उसे ध्वस्त कर दिया है। 'हम सब एक हैं' कहानी में ब्राह्मणवाद की इसी नीति का वर्णन है। सिंधु घाटी सभ्यता समानता के जीवन का द्योतक रहा है। बाह्य आक्रमण ने समानता की ऐसी व्यवस्था को ध्वस्त कर व्यक्तिवादी सवर्णवादी व्यवस्था की स्थापना किया है। ''इन्होंने सिंधु घाटी में अपना साम्राज्य स्थापित किया हुआ था इनकी एकता को विखंडित करके धर्म में इन्हें निकृष्ट घोषित किया और इनके लिए अलग-अलग काम निर्धारित किए यहां तक की एक वर्ण जाति दूसरे वर्ण-जाति के काम को भी नहीं कर सकती थी।''[24] यहां वर्ण व्यवस्था के जन्म के कारणों को सहज ही समझा जा सकता है। वर्णाश्रम व्यवस्था ने किस प्रकार

जाति व्यवस्था का सृजन किया है उसका भी रेखांकन कहानी में है। ''ऋषियों ने जातियां केवल शूद्रों की बनाई, बाकी पहले तीन वर्ण ब्राह्मण एक ही वर्ण एक ही जाति, क्षत्रिय एक ही वर्ण एक ही जाति, वैश्य एक ही वर्ण एक ही जाति, मगर शूद्र एक वर्ण तो है लेकिन इसमें हजारों जातियां हैं, और सभी अपने आपको एक-दूसरे के हिसाब से छोटा-बड़ा मानती है, इनके बीच हर रोज इसी कारण लड़ाई झगड़े होते हैं हमारे पूर्वज ऐसा नहीं करते तो हम बच नहीं सकते थे।''[25] यहां वर्ण और जाति के जन्म का कारण ब्राह्मावादियों की स्वार्थ नीति को देखा जा सकता है। वर्ण और जाति के जन्म को आश्रय देता है धर्म। धर्म और राजनीतिक एवं वाणिज्य का अद्‌भुत समीकरण है। तीनों एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। एक दूसरे से जुड़ कर चलता है। और यह सब ब्राह्मणवादियों की स्वार्थ परक नीति है। समाज के विभाजन का मूल कारण हैं। राजनीतिक विचारधारा और धार्मिक संस्थानों को समीकरण और उसकी नीतियों को भी कहानी में स्पष्ट किया गया है-

''अब हमारी एक राष्ट्रीय पार्टी है और यह पार्टी उसी विचारधारा की है जिस विचारधारा के लिए आप यहां बैठे हैं। वैसे तो आज तक इस देश का शासन चलाने वाले सभी दल हमारी विचारधारा के ही रहे हैं।''[26]

हृदय परिवर्तन' राजनीतिक विचारधारा है। यह विचारधारा ही दलित समाज को सांसत में रखता है। उसे भ्रमित करता रहता है। 'हम अपवित्र जातियों का राजनैतिक प्रयोग करने के लिए ऐसा कर रहे हैं बल्कि यह कहना होगा कि ईश्वर की सभी संतानें एक जैसी हैं! हमारे धर्म में कोई भेदभाव नहीं है!' 'यदि हम सभी लोगों को भ्रमित रखें तो जनता को लगेगा कि हम अच्छा काम कर रहे हैं सरकारें भी हमें अधिक से अधिक ग्रांट देंगी कहीं मंदिर के नाम पर, कहीं गऊ शाला के नाम पर तो कहीं हम एनजीओ बनाकर इसे ले लेंगे और उस पैसे का प्रयोग हम ऐसे ऐसे अनेक आश्रम मंदिर बनाने में करेंगे। दूसरे यहां से हम अपना राजनैतिक काम भी चला सकते हैं। पूंजीपति हमें दान देकर अपना काला धान सफेद बना लेते हैं और इनकम टैक्स विभाग की नजरों से बचते हैं।''[27] इतना ही नहीं ''आज इससे अच्छा व्यवसाय कोई हो ही नहीं सकता।'' धर्म और धार्मिक व्यवस्था एक व्यवसाय बन गया है। धर्म का पूंजीकरण, बाजारीकरण, निजीकरण के साथ व्यवसायीकरण भी हो गया है। इसका एक राजनैतिक संगठन और शक्ति भी बन गया है और बनाने का प्रयास भी किया जा रहा है। ''हमें आज अपनी विचारधारा की राजनैतिक ताकत भी मिल जाए तो फिर देखना महाराज! नए दौर में हमारी संस्कृति के ये किले, क्या क्या कारनामें दिखाते है।''[28]

आज गली मुहल्ले कीर्तन, भजन और सत्संग का आयोजन किया जा रहा है। वस्तुतः यह संस्कृति आम जनता को इतिहास की सच्चाई से वंचित करने का उपाय है। उसका धार्मिक संस्कार है। इतिहास की धारा जो प्रतिरोध की संस्कृति से बदलने वाली है उसको मोड़ने का मुहिम है जिससे आम जनता वंचित है और धर्मशास्त्र के भय से भयभीत भी। उसकी चेतना को कुंद करने के लिए ही धार्मिक अनुष्ठान, कीर्तन, भजन आदि आयोजित किए जाते हैं। 'सत्संग की चासनी' तो ब्राह्मणवाद का नया सगफूा है राज करने का। इसीलिए वे कहते हैं कि ''हमारा भला इसी में है कि हमारे सभी लोग अधिक से अधिक से मंदिर-आश्रम बनाएं और जनता को, खासकर जिन्हें धर्म द्वारा दंडित किया हुआ है उन्हें अपने साथ जोड़कर रखें, यदि हम ऐसा करते हैं तो हमें कोई अपने रास्ते से डिगा ही नहीं सकता। उनके दिमाग में धर्म को जितना भरा जाए वे उतने ही हमारे लिए काम करेंगे।''[29] यह जो धर्म की धार्मिकता भरने की बात है यही दलित समाज की चेतना को कुंद करती है और उसकी दयनीयता का कारण भी। ब्राह्मणवादियों के मन में कभी धर्म के कारण करुणा की भावना नहीं पैदा हो सकती है क्योंकि वे धर्म का बाजारीकरण और राजनीतिकरण करते हैं जिसकी भविष्य में प्रायोजित संभावनाएं स्पष्ट है। यही कारण है कि अजमेर सिंह काजल लिखते हैं कि ''उनके मन में करुणा पैदा नहीं हुई थी, वरन वे भविष्य के सुनहरे सपनों में खो गए थे।'' इसी सपनों के कारण सुबह-सुबह अपने भक्तों द्वारा भूखे नंगे मैले-कुचौले आदमी को अधमरा कर दिया गया था। उन्हें उठाकर अंदर बैठाएं और उपदेश वाचन करने लगें।

''तुमने इस मानव के साथ अच्छा नहीं किया। हम सब एक ही ईश्वर की संतान हैं, वह हमें देख रहा है आज से हमारे आश्रम में किसी के साथ कोई भेदभाव नहीं होगा सभी भक्त आपसी भेदभाव भुलाकर मिलकर रहे हम सब एक हैं।''[30] मानव की संवेदना में करुणा जीवन दायिनी शक्ति है। लेकिन स्वार्थ की राजनीति में धर्म की दकियानूसी करना और ब्राह्मणवाद की व्यवस्था करना फूहड़ता की निशानी 'हम सब एक हैं'।

ब्राह्मणवादियों का यह 'हम सब एक हैं' की अवधारणा में भक्तिकाल की संवेदना है जिसमें ईश्वर के नजर में सभी मनुष्य एक समान है लेकिन सामाजिक धरातल में किसी में भी एकता नहीं है। आधुनिकता के धरातल पर भारतीय समाज कभी भी

एक नहीं रहा है और जब तक जाति व्यवस्था, या उससे उपजी असमानता है वह कभी भी समानता आधारित समाज हो भी नहीं सकता है।

दलित साहित्य में दलित समाज और मुस्लिम समाज की संवेदना एक सूत्रता में बंधी दिखाई देती है। इतिहास गवाह है कि हिन्दू धर्म की ब्राह्मणवादी नीतियों के कारण समाज में काफी संख्या में धर्मातंरण हुआ है। समानता की चाहत और मनुष्यता का सौन्दर्य ने धर्मांतरण की प्रक्रिया में समाज में स्थापित किया है। दलित कहानियों में ऐसा सौन्दर्यबोध निरंतर एक सूत्रता में समन्वय की भावना के साथ देखा जा सकता है। ''धर्म बदलने वाले लोगों ने हिन्दुओं की धार्मिक गैर बराबरी के खिलाफ समानता की चाहत में इस्लाम को अपनाया था मुसलमान वे अपने आप नहीं बने बल्कि अपने ही धर्मवालों के अत्याचारों से तंग आकर उन्होंने विद्रोह किया था आज इनके साथ भी न्याय होना चाहिए।''[31] यहां समानता, मानवता और न्याय के साथ दलित सौन्दर्य बोध को समझा जा सकता है। दलित सौन्दर्य बोध दलित के शब्दकोशीय अर्थ को त्याग कर सामाजिक परिवर्तन का संज्ञान लेता है। यह दलित साहित्य की खास विशेषता है। दलित साहित्य की यह वैचारिकी है कि वह समाज में न केवल परिवर्तन की बात करती है बल्कि पौराणिक शब्दों में नवीन अर्थ भरकर फिर से उसे परिभाषित भी करती है। इस नवीनता में दलित समाज न केवल अपनी अस्मिता और अस्तित्व को एक नया अर्थ देता है बल्कि स्वयं को तथा कथित हिन्दू समाज से अलग माना है। वह न हिन्दू है और न ही मुसलमान, बल्कि एक मानव के रूप में अपनी पहचान मानता है। जिसकी एक सशक्त परंपरा रही है। विराज हर रोज धार्मिक दुर्व्यवहारों को रेखांकित करते हुए कहते हैं-

''आज लाखों करोड़ों लोग एक अवसर की तलाश में है, यदि नहीं सुधारे तो अल्पसंख्यक बन जाओगे तुम धर्म की ठेकेदारी मत लो, जिसकी जैसी मर्जी वो वैसे ही धर्म में रहे, इस मामले में ये जबरदस्ती नहीं चल सकती। जहां तक वंचितों की बात है तुम इन्हें हिन्दू गिनते हो और उनका अपमान भी करते हो, यह दोगलापन क्यों? दलित न हिन्दू थे और न रहेंगे हम तो बुद्ध के समतापरक दर्शन को अपनाने वाले बाबा भीम के अनुयाई हैं।'[32]

यहां यह स्पष्ट होता है कि दलित समाज हिन्दू समाज का अंग नहीं है। उनका अपना सामाजिक अस्तित्व है और वे अपनी सामाजिकता के सौन्दर्य को स्वयं रेखांकित कर रहे हैं। जब तक वे प्रभुत्वशाली वर्ग और ब्राह्मणवादी मानसिकता में गिरफ्त में थे तब तक अपने विचार को अभिव्यक्त नहीं कर पा रहे थे और अपने सौन्दर्यबोध को व्यक्त नहीं कर पा रहे थे। दलित समाज में चेतना का संचार होने से ब्राह्मणवादी मानसिकता के कारण समाज में जहां-जहां अराजकता और जातिवादी मानसिकता का हमला हो रहा है उसके खिलाफ एक नया मोर्चा बनाने की बात दलित कहानी करती है। विभिन्न सामाजिक संस्थानों और संस्थाओं में व्याप्त ब्राह्मणवादी मानसिकता के अंत की बात दलित सौन्दर्य बोध करता है। आत्मनिरीक्षण कर समतापरक समाज के निर्माण की बात करता है। ''नए व प्रगतिवादी मूल्यों में पलने वाली इस नई पीढ़ी को चाहिए कि सभी तरह के सामाजिक भेदभावों को जीवन से समाप्त करने में सहयोग करके 21वीं शताब्दी का नया समाज बनाएं। विद्यार्थियों को चाहिए कि नए दौर के वैज्ञानिक और लोकतांत्रिक मूल्यों को अपनाकर स्वयं समानता और सम्मान का जीवन जिए तथा दूसरों को भी जीने दें। हमारे कलेज में जो कुछ हुआ इसके लिए हम सभी को आत्मनिरीक्षण करना चाहिए, ऐसी घटनाएं विद्यार्थियों के लिए और देश के भविष्य के लिए बेहद खतरनाक हैं। समाज में व्याप्त इस अराजक मानसिकता को मानवीय बनाने व न्याय का संघर्ष जारी रखने के लिए यह जरूरी है कि हम सब मिलकर, शिक्षा के केन्द्रों में व्याप्त जातिवादी मानसिकता का अंत कर दें।''[33] गौरतलब बात यह है कि जहां से मानव में चेतना का संचार किया जाता है वही जगह, वही संस्थान और संस्था ब्राह्मणवाद के गिरफ्त में है तो समाज का निर्माण किस प्रकार से हो सकता है! इसका सहज अनुमान लगाया जा सकता है। शिक्षा ज्ञान का साधन है। शिक्षा के बिना लोगों को सही जानकारी नहीं होती है और सही जानकारी के अभाव में लगातार शोषण का शिकार होते रहते हैं। 'करुणा' एक ऐसी ही कहानी है जो परंपरागत मान्यताओं के खिलाफ संवैधानिक चेतना को रेखांकित करती है तथा शिक्षा के केन्द्र में धार्मिक शिक्षा का विरोध कर, ज्ञानशाला की बात करती है, सूचना के अधिकारों की बात करती है और वोट की राजनीति को स्पष्ट करती है तथा स्वाभिमान की चेतना का संचार करती है। यह नायिका प्रधान कहानी है तथा स्त्री चेतना को रेखांकित करती है। स्त्री चेतना किस प्रकार ज्ञानशाला को चलाती है और भविष्य को सवारती है जिस पर देश का भविष्य टिका होता है उसे बनाती है। स्त्री सिर्फ जननी नहीं होती है वह सृजन का काम भी करती है। जो सृजनशील है वह ज्ञानशाला है। इसलिए कहानी का अंत स्त्री शिक्षा और स्त्री ज्ञानशाला के साथ होती है कि ''ज्ञानशाला का समय हो गया। चलो बहन जी, हमारे घर चलो।''[34] यहां पर स्त्री चेतना के साथ राजनीति चेतना की ओर भी संकेत किया गया है।

'बहन जी' राजनीतिक चेतना का संकेतार्थ है।

दलित कहानी 'क्रांति' राजनीतिक चेतना और भूमि वितरण की कथा कहती है। दलित नायक फुले राजनीति व्यवस्था को समतापरक समाज के निर्माण के लिए आवश्यक और अनिवार्य बताते हैं और भूमि के समान वितरण की व्यवस्था द्वारा समाज में समानता की स्थापना करना चाहते हैं। उन्हीं शब्दों में ''इस देश की धरती बड़ी उपजाऊ है इस भूमि पर इस देश का अधिकार है मगर यह भूमि बहुत कम लोगों के कब्जे में है। इसका समान बंटवारा होना चाहिए था जिनकी सत्ता रही उन्होंने ऐसा नहीं किया। यदि करते तो देश के सभी लोगों के पास जमीनें होती, ना कोई जमींदार होता, ना कोई मजदूर, सभी समान होते ना गांवों में हर रोज प्रतिबंध लगते।''[35] कानूनी तौर पर भूमि का समान वितरण की योजना बन गई है लेकिन व्यवहार में ऐसा नहीं हुआ है। यही सबसे बड़ी विडम्बना है। योजना और कानून तो बन जाती है लेकिन उसका पालन नहीं होता है। यही पालन न होना, न करना ही ब्राह्मणवादी मानसिकता है। राजनीति सत्ता पर दलित समाज का आसीन होने से ही यह संभव हो सकता है क्योंकि जिस वर्ग या समुदाय का वर्चस्व या सत्ता होती है वह वर्ग समाज में अपनी वैचारिकी के अनुसार कार्य करता है। इसलिए दलित समाज का राजैनितिक सत्ता पर आसीन होना दलित समाज में क्रांति की चेतना पैदा करना है और समतामूलक समाज की स्थापना करना है। इसलिए कहानी की संवेदना इस बिन्दु पर केन्द्रित होती है कि ''दादा! लीडरवा नहीं, क्रांति आवत है!''[36] यह लीडरवा भले ही दलित समाज का शब्द है, उसी के लिए संबोधन है लेकिन वह केवल शब्द नहीं, क्रांति का परिचायक है। राजनीतिक सत्ता तंत्र की इकाई पर कब्जा होने से ही दलित समाज में आत्मचेतना और आत्मसम्मान की भावना पैदा हुई है। इसी चेतना का नतीजा है कि गांव, शहर आदि सभी जगह का परिदृश्य बदलने लगा। आतंक और दुर्व्यवहार से उसकी मुक्ति की योजना सफल होने लगी। इस सफलता को ब्राह्मणवादी मानसिकता सहन नहीं कर सकती और इसी का परिणाम होता है कि भविष्य की योजना में व्यस्त दलित चेतना की राजनीति कार्यरत थी वहीं ब्राह्मणवादी मानसिकता गांव को ही लाग के हवाले करके राजनीति को अंजाम दे गई। गाँव और गाँव के दलित समुदाय असुरक्षा के घेरे में घिर गए। इसलिए सबसे पहले वे अपनी सुरक्षा की व्यवस्था की बात करते हैं। ''जब तक हम अपनी सुरक्षा व्यवस्था नहीं बनायेंगे हमारा उत्पीड़न नहीं रूक सकता? रात होने को थी मगर त्रस्त जीवन रोटी की चिंता के साथ भविष्य के सपनों में खो गया था।''[37] भविष्य की चिंता दलित वैचारिकी के केन्द्र बिन्दु है। मानव जीवन की मूलभूत आवश्यकता और मानवीय सौन्दर्य का भविष्य दलित साहित्य का सौन्दर्यबोध है।

दलित साहित्य की वैचारिकता में आत्मलोचन का सौन्दर्य है। इसी सौन्दर्य के कारण दलित आंदोलन और उसकी रचनाएं विकास-क्रम में आत्मलोचन करती हैं। बिना आत्मलोचन के सौन्दर्यबोध में जड़ता की स्थिति की आ जाती है। और इस स्थिति में न सामाजिक समस्याओं की पहचान हो पाती है और न ही सामाजिक परिवर्तन किया जा सकता है। जयप्रकाश कर्दम की 'मूवमेंट' कहानी इसी वैचारिक आत्मलोचन को रेखांकित करती है। ''क्या एक्जिस्टेंस है मेरा? यही कि मैं तुम्हारे बच्चे की माँ और खुद अभाव और कष्ट सहकर भी तुम्हारी इज्जत की रक्षा करने में अपने आपको झोंक देने वाली एक औरत हूँ। बस यही न, या इससे आगे और भी कुछ?''. सिर्फ चाहते हो न? पर रखना तो चाहते हो नौकर की तरह इस चारदीवारी के अंदर ही। नहीं तो कितनी बार मौका दिया है तुमने मुझे घर से बाहर जाने का, कितनी बार अपने साथ ले गए हो तुम? बाहर के लिए तो सिर्फ तुम हो, मैं तुम्हारे परिवार और मेहमानों के आवभगत और सेवा के लिए हूँ। तुम बराबरी की बात करते हो न, बराबरी का मतलब है हर क्षेत्र में हर स्तर पर बराबरी। हर किसी को अवसर की स्वतंत्रता और समानता। मेरी सारी जिंदगी तो परिवार की जिम्मेदारियां निभाते हुए घर की चारदीवारी की भेंट चढ़ रही है। मेरे लिए कौन सा अवसर है इस पर नहीं सोचोगे तुम कभी। यही तो सबसे बड़ी दिक्कत है। मैं पूछती हूँ क्या यही प्रगतिशीलता है तुम्हारी कि बाहर जाकर अन्याय और असमानता के खिलाफ भाषण झाड़ो और खुद घर में असमानता का व्यवहार करो? यही मूवमेंट है तुम्हारा?''[38] 'घर में असमानता का व्यवहार' यदि खत्म नहीं किया जाता है तो बराबरी का मतलब शून्य है। 'घर की चारदीवारी' की जिंदगी के अस्तित्व को समानता व स्वतंत्रता का हर क्षेत्र व हर स्तर लाना होगा तभी मूवमेंट का आधार मजबूत होगा। उसकी वैचारिकता पुख्ता होगी। उसका सौन्दर्य विश्व बंधुत्व व गरिमा से सम्पन्न होगा। यदि ऐसा नहीं होता है तो प्रगतिशीलता का अर्थ शून्य और मूवमेंट की वैचारिकता का सौन्दर्य 'जमीन पर नहीं रेत की ढेर पर खड़ा' होगा और 'रेत 'उस' के नीचे से खिसक रही है।' यहीं से आत्मलोचन और इतिहासबोधा की प्रक्रिया शुरू होती है और दलित सौन्दर्यबोध रेखांकित होता है।

दलित कहानी में आक्रोश सदियों से मानवीय अधिकारों से वंचित होने के दर्द से पैदा हुआ है। वंचना की प्रक्रिया को रोकने का काम

दलित चेतना सामूहिक रूप से कर रही है। 'लाठी' कहानी ऐसी कहानी है जिसमें दलितों को उनके हक से वंचित कर दिया जाता है जिसका प्रतिरोध दलित समाज अपने ढंग से करता है। लेकिन इस प्रतिरोध में हिंसा का भाव नहीं है। एक आक्रोश बेचैनी पैदा कर रहा है। यह दलित साहित्य का सौन्दर्य बोध है कि आक्रोश हिंसा में नहीं विकल्प में रूपांतरित होता रहा है। ''अपने गुस्सें कू संभाल कै ठण्डे दिमाग से काम ले। हमे कोई दूसरा उपाय सोचना पड़ेगा।'' अर्थात आक्रोश नहीं विकल्प की तलाश की जा रही है। यह विकल्प ही दलित समाज को बेचैन करता है। ''थोड़ी देर पहले का आक्रोश और गहमागहमी खत्म हो गई थी। फिर से चारों ओर निस्तब्धता व्याप्त हो गई थी। लेकिन कोई भी सो नहीं पा रहा था। सब अपनी-अपनी चारपाइयों पर बेचौनी से करवटें बदल रहे थे।''[39] बेचैनी का यही सौन्दर्य समाज में साहित्य के माध्यम से सामाजिक परिवर्तन की स्थापना करता है। दूसरे शब्दों में साहित्य का सौन्दर्य जनमानस में बेचौनी पैदा करता है न कि समाज को नींद के आगोश में सुला देता है। वर्तमान दलित कहानी में आक्रामकता, आक्रोश संयम में तब्दील होकर नव आकार ले रहा है।

समग्रत: यह कहा जा सकता है कि दलित कहानियां न केवल भारतीय समाज की विद्रूपता, विषमता, असमानता, ब्राह्मणवादी मानसिकता, पितृसत्ता, जाति-व्यवस्था व उसकी मानसिकता को उजाकर करती हैं बल्कि दलित समाज की मानसिकता, उसकी सोच, उनकी समस्याएं आदि को भी रेखांकित करती हैं और नया सौन्दर्यबोध स्थापित करती हैं। यह सौन्दर्यबोध जाति व्यवस्था, ब्राह्मणवादी मानसिकता और उसके सभी तंत्रों का न केवल विरोध करता है बल्कि समूल नष्ट करने की कवायद रचता है। यातना, वेदना और पीड़ा आदि की संत्रस के साथ प्रतिरोध की संस्कृति को स्थापित करता है। संघर्ष और प्रतिरोध से उत्पन्न नवीन सौन्दर्यबोध मनुष्य सत्ता की स्थापना करता है। आत्मलोचन करता है। सामाजिक-सांस्कृतिक स्तर पर सामाजिक समता एवं सामासिक संस्कृति की स्थापना करता है। जाति वर्चस्व और व्यवस्था को तोड़ने के लिए अंर्तजतीय विवाह की स्थापना करता है, साथ ही उसके स्वरूप को निर्धारित करता है। राजनीतिक नेतृत्व की कवायद करता है। संसाधान की समान वितरण की बात करता है। एक समृद्धशाली और विकसित गाँव, समाज एवं राष्ट्र निर्माण की बात करता है और जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति की नई संरचना करता है। दूसरे शब्दों में जीवन-संस्कृति के सौन्दर्य की स्थापना करता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची:

1. ओमप्रकाश वाल्मीकि, सलाम, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2004, पृ. 29
2. वही, पृ. 30
3. सूरजपाल चौहान, हैरी कब आएगा, सम्यक प्रकाशन, नईदिल्ली, 2003, पृ. 43
4. वही, पृ. 69
5. वही, पृ. 81
6. मोहनदास नैमिशराय, आवाजें, समता प्रकाशन, दिल्ली, 1998, पृ. 62
7. ओमप्रकाश वाल्मीकि, सलाम, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2004, पृ. 55
8. ओमप्रकाश वाल्मीकि, घुसपैठिये, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2003, पृ.29
9. वही, पृ.34
10. ओमप्रकाश वाल्मीकि, सलाम, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2004, पृ. 132
11. मोहनदास नैमिशराय, आवाजें, समता प्रकाशन, दिल्ली,1998, पृ. 41
12. वही, पृ.32
13. वही, पृ. 33
14. वही, पृ. 41
15. वही, पृ. 42
16. वही, पृ. 43
17. वही, पृ. 44
18. वही, पृ. 58
19. मोहनदास नैमिशराय, आवाजें, समता प्रकाशन, दिल्ली,1998, पृ. 63
20. ओमप्रकाश वाल्मीकि, घुसपैठिये, राधाख्रष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2003,पृ.66
21. सोलजी के थॉमस, वर्णाश्रम पर बार करती हाशिए की अनसुनी आवाज, ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानियों में सामाजिक लोकतांत्रिक चेतना, (सं.) हरपाल सिंह 'अरुष', जवाहर पुस्तकालय, मथुरा, 2008, पृ. 29
22. अजमेर सिंह 'काजल', गणतंत्र के नायक,समता प्रकाशन, रोहतक,2008,पृ.10
23. वही, पृ. 11
24. वही, पृ. 11
25. वही, पृ. 12
26. वही, पृ. 14
27. वही, पृ- 14
28. वही, पृ. 15
29. वही, पृ- 16
30. वही, पृ. 16
31. वही, पृ. 20
32. वही, पृ. 21
33. वही, पृ- 23
34. वही, पृ. 36
35. वही, पृ. 42
36. वही, पृ. 43
37. वही, पृ. 54
38. जयप्रकाश कर्दम, तलाश, विक्रम प्रकाशन, दिल्ली, 2005, पृ. 88
39. वही, पृ. 96

◆◆◆